जैन गृहस्थ आचार-मीमांसा और काय-शुद्धि का समाजशास्त्रः

आचार्यश्री वसुनन्दिजी मुनिराज विरचित 'सूतग-पादग-णिण्णय-विही' का वैज्ञानिक एवं तात्त्विक अनुशीलन

लेखकः डॉ. आशीष जैन आचार्य 'शाहगढ़' (राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)
महामंत्री, प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन
संयुक्त मंत्री – अ.भा.दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

शोध-सार

जैन दर्शन का मूल दृष्टिकोण केवल पारमार्थिक अथवा लोकातीत मोक्षमार्ग तक सीमित नहीं है, अपितु उसने गृहस्थ-जीवन (श्रावकाचार) को भी एक सुव्यवस्थित, वैज्ञानिक और नैतिक नियमों पर आधारित सामाजिक -धार्मिक व्यवस्था प्रदान की है। आचार्यश्री वसुनन्दिजी मुनिराज विरचित **'सूतग-पादग-णिण्णय-विही' (सूतक-पातक निर्णय विधि)** प्राकृत जैन श्रावकाचार परम्परा का एक अद्वितीय और प्रामाणिक ग्रन्थ है , जिसमें जन्म (सूतक), मरण (पातक) और शारीरिक-मानसिक अवस्थाओं के कारण उत्पन्न होने वाली शुचिता -अशुचिता (अशौच) का सूक्ष्म निरूपण किया गया है। ग्रन्थकार ने ६४ गाथाओं के माध्यम से यह प्रतिपादित किया है कि आत्मशोधन के पथ पर बढ़ने के लिए बाह्य शुद्धि (द्रव्य, क्षेत्र, काल) और आन्तरिक शुद्धि (भाव) का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। प्रस्तुत शोध -आलेख में ग्रन्थ के मूल प्राकृत सूत्रों , उनके हिन्दी अनुवाद , और तात्त्विक -वैज्ञानिक आधारों का सांगोपांग अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। इसमें पीढ़ीगत सूतक-पातक नियमों , अपवादों, अनुष्ठानिक निषेधों , मानसिक साधना के विकल्पों और इस व्यवस्था के पीछे निहित दार्शनिक एवं कर्मसिद्धान्तपरक कारणों का परिमार्जित एवं प्रांजल विवेचन किया गया है।

मुख्य शब्द :- सूतग-पादग-णिण्णय-विही, सूतक-पातक निर्णय विधि , आचायश्री वसुनंदिजी महाराज, श्रावकाचार, काय-शुद्धि, शुभोपयोग, रत्नत्रय, अन्तराय कर्म, कंपिलजी तीर्थक्षेत्र।

❖ प्रस्तावनाः जैन श्रावकाचार और सूचिता का दर्शन

जैन आध्यात्मिक साधना का परम लक्ष्य यद्यपि पूर्ण वीतरागता एवं सिद्धत्व की प्राप्ति है , तथापि इस परम लक्ष्य की आधारशिला गृहस्थ जीवन में ही रखी जाती है जैन श्रावकाचार के ग्रन्थों में गृहस्थों के दैनिक क्रियाकलापों , व्रतों और शुचिता के नियमों का गहन विश्लेषण प्राप्त होता है। इसी सन्दर्भ में, जन्म और मरण के समय परिवार में होने वाली 'अशौच' या शुचिता-अशुचिता का विवेचन करने के लिए **आचार्यश्री वसुनन्दिजी मुनिराज** ने प्राकृत भाषा में **'सूतग-पादग-णिण्णय-विही'** का प्रणयन किया।

इस ग्रन्थ का प्रस्थान -बिन्दु केवल कर्मकाण्डीय या रूढ़िवादी शुद्धि नहीं है , वरन् इसका गहरा सम्बन्ध जीव के आत्म-शोधन से है। ग्रन्थकार ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही 'सिद्धत्व' को शुद्धतम दशा के रूप में परिभाषित करते हुए स्पष्ट करते हैं कि कर्मक्षय के माध्यम से ही मुक्ति सम्भव है और इसके लिए बाह्य तथा आन्तरिक क्रियाओं की शुचिता अनिवार्य है।

❖ आत्मशोधन, धर्म और गृहस्थ आचार का तात्त्विक आधार

❖ धर्म और शुभोपयोग की मीमांसा

आचार्यश्री वसुनन्दि जी महाराज धर्म और श्रावक के मूल सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए गाथा २ में लिखते हैं:-

अप्पसोहगो धम्मो, सावया सअप्पसोहणकंखी।
सुहाओवओगो हि तस्स, कारणं असुह- णासगो सो॥२॥

भावार्थः- धर्म आत्मा का शोधक (पवित्र करने वाला) है। श्रावक (गृहस्थ साधक) अपनी आत्मा के शोधन का आकांक्षी होता है। शुभोपयोग (शुभ परिणाम/क्रियाएँ) उस आत्मशोधन का कारण है और वह शुभोपयोग अशुभ का नाश करने वाला है।

यहाँ 'धर्म' को केवल बाह्य आचरण न मानकर 'आत्म-शोधक' कहा गया है। श्रावक का मूल स्वरूप **'सअप्पसोहणकंखी' (स्व-आत्म-शोधन-आकांक्षी)** होता है। गृहस्थ अवस्था में यद्यपि पूर्ण शुद्धोपयोग (राग-द्वेष रहित परम वीतराग अवस्था) तात्कालिक रूप से सम्भव नहीं है , इसलिए साधक 'शुभोपयोग' (देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति , व्रत, दान आदि) का आश्रय लेता है। यह शुभोपयोग अशुभ कर्मों के बन्ध को रोकता है और पूर्व-बद्ध अशुभ कर्मों की निर्जरा करता है।

❖ रत्नत्रय और सिद्धत्व

मोक्षमार्ग का सोपान 'रत्नत्रय' (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) है, जो उभय (निश्चय और व्यवहार) रूपों में धारण किया जाता हैः-

सिद्धत्त- दसा सुद्धा, सव्वकम्मेक्खयादो सा सक्का।
उभय- रयणत्तयेणं, कम्मेक्खयो तह णिव्वाणं॥३ ॥

सावयो रयणत्तयं, धरिय होज्ज समणो अप्प- हिदरत्थी।
सम्मत्तणाण सु चरिय- मइअप्पा णिव्वाणमग्गी॥४॥

भावार्थ :- सिद्धत्व की दशा पूर्णतः शुद्ध है और वह सभी कर्मों के क्षय होने से ही सम्भव है। निश्चय और व्यवहार रूप दोनों (उभय) रत्नत्रय से कर्मों का क्षय तथा निर्वाण प्राप्त होता है। अतः आत्महित चाहने वाले श्रावक को रत्नत्रय धारण करके श्रमण (मुनि) बनना चाहिए ; क्योंकि सम्यग्दर्शन , सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से युक्त आत्मा ही वास्तविक मोक्षमार्गी है। यह गाथा श्रावक जीवन के अंतिम लक्ष्य को रेखांकित करती है। गृहस्थ धर्म (श्रावक धर्म) एक संक्रमणकालीन अवस्था है , जिसका अंतिम गन्तव्य मुनिधर्म (श्रमण धर्म) धारण करके रत्नत्रय की पूर्णता के द्वारा सिद्धत्व को प्राप्त करना है।

❖ श्रावक की आचार-संहिता और जीवन-मूल्य

आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज ने गृहस्थ जीवन को उत्कृष्ट बनाने के लिए श्रावक की मर्यादाओं, व्रतों और मूलगुणों का सांगोपांग वर्णन किया है।

❖ गृहस्थ धर्म और ११ प्रतिमाएँ

गृहस्थों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए ग्यारह सीढ़ियाँ (प्रतिमाएँ) बताई गई हैं:-

सुहगिहत्थो समत्थो, सावयधम्मं सुपालिदुं सेट्ठं।
सावयधम्मो णेयो, अणगुणुसिक्खावदादिप्पं दु॥५ ॥
सायाराणेयायरस- पडिमा सग्गसुहाण पच्चक्खेणं।
मोक्खस्स परंपराइ, हेदू तम्हा सु पालेज्जा॥६ ॥

भावार्थ :- उत्तम गृहस्थ श्रेष्ठ श्रावकधर्म का पालन करने में समर्थ होता है। श्रावकधर्म को अणुव्रत , गुणव्रत और शिक्षाव्रतों से युक्त जानना चाहिए। श्रावकों (सागारों) की ग्यारह प्रतिमाएँ प्रत्यक्ष रूप से

स्वर्ग के सुखों को देने वाली और परम्परा से मोक्ष की कारण होती हैं इसलिए उनका नियमपूर्वक पालन करना चाहिए।

❖ अष्ट मूलगुण और सप्त व्यसन त्याग

श्रावक जीवन का प्रारम्भ नैतिक शुचिता से होता है, जिसके बिना कोई भी साधना सम्भव नहीं है:-

अट्ठमूलगुणा सया, बारसोत्तर- गुणा सायाराणं।
सत्तवसरणचागी तह, धम्माणुरायी संवेगी॥८॥
महुमंसमज्जचागी, तह पंचोदंबरफल- परिचागी।
जिणदेव- णिग्गंथगुरु- जिणागम- जिणधम्म- भत्तो य॥९॥

भावार्थ :- सागारों (गृहस्थों) के सदा आठ मूलगुण और बारह उत्तरगुण होते हैं। वे सप्त व्यसनों (जुआ, मांस, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी, परस्त्री रमण) के त्यागी, धर्मानुरागी और संवेगी (संसार से भयभीत) होते हैं। वे मधु (शहद), मांस और मद्य (मदिरा) के त्यागी तथा पाँच उदुम्बर फलों (बड़, पीपल, पाकर, उमर, कठूमर) के त्यागी होते हैं, एवं जिनदेव, निर्ग्रन्थ गुरु, जिनागम और जिनधर्म के परम भक्त होते हैं।

❖ ४. द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव शुद्धि की शास्त्रीय प्रविधि

जैन पूजन-पद्धति और अनुष्ठानों में मात्र शारीरिक क्रियाएँ पर्याप्त नहीं हैं ; वहाँ चतुर्विध शुद्धि (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव) को अनिवार्य माना गया है ।

शुद्धि भेद	शास्त्रीय स्वरूप एवं व्याख्या	ग्रन्थगत सन्दर्भ
द्रव्य शुद्धि	देव-शास्त्र-गुरु की पूजा हेतु प्रयुक्त होने वाले नैवेद्य, जल, चन्दन आदि सामग्रियों और स्वयं पूजक के शरीर की पवित्रता।	गाथा १५
क्षेत्र शुद्धि	मलमूत्र आदि गन्दगियों से रहित, प्राकृतिक प्रकाश से युक्त, हिंसक एवं सावद्य (पापयुक्त) कार्यों से रहित स्थान, जो धर्मध्यान के अनुकूल हो।	गाथा १७
काल शुद्धि	सूर्य/चन्द्र ग्रहण, अकाल (अनुचित समय), वैकाल (सन्ध्याकाल आदि) जैसी आध्यात्मिक रूप से निषिद्ध बेलाओं से रहित समय।	गाथा १८
भाव शुद्धि	कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) की मन्दता, मन की	गाथा १८, १९

	एकाग्रता, संसार-विषयों से विरक्ति और विशुद्ध भक्ति परिणाम।	

आचार्य लिखते हैं कि जो उत्कृष्ट नर या नारी इन चारों शुद्धियों से युक्त होकर जिनदेव, जिनश्रुत और निर्ग्रन्थ गुरुओं की पूजा -अर्चना करते हैं, वे ही वास्तव में प्रशंसनीय हैं और वही शुद्ध श्रावक जिन-अभिषेक तथा आहार-दान देने में समर्थ होता है।

❖ सूतक-पातक (अशौच) की अवधारणा एवं शास्त्रीय नियम

शारीरिक और कौटुम्बिक स्तर पर आने वाली अशुद्धि की अवस्था को जैन आगमों में सूतक और पातक कहा गया है।

- **सूतक और पातक की परिभाषा**

कुले जम्मं सूयगो, मरणं पादगो वा रजोधम्मो।
कुसीलपणिद्धी वि सय, जाणेज्जा असुद्ध-अवत्था हि॥२८॥

भावार्थः- कुल (परिवार) में बालक का जन्म होना 'सूतक' है और कुल में किसी का मरण होना 'पातक' जानना चाहिए। सूतक, पातक, रजोधर्म (मासिक धर्म) और कुशील प्रवृत्ति (व्यभिचार) – ये सदा ही अशुद्ध (अपवित्र) अवस्थाएँ जाननी चाहिए।

- **सूतक-पातक काल में धार्मिक अनुष्ठानिक निषेध**

अशौच की इस अवस्था में गृहस्थ के लिए अनेक बाह्य धार्मिक क्रियाओं का निषेध किया गया है, क्योंकि इस काल में कायिक अशुचिता और मानसिक संक्लेशता (शोक या अत्यधिक हर्ष) का वातावरण रहता है :-

1. **जिनाभिषेक एवं पूजन निषेध :** सूतक-पातक काल में प्रत्यक्ष जिनाभिषेक और अष्टद्रव्य से पूजन करना सर्वथा वर्जित है।
2. **आहार दान निषेध :** निर्ग्रन्थ मुनिराजों और आर्यिकाओं को इस अवस्था में आहार दान नहीं दिया जा सकता।
3. **शास्त्र-स्पर्श निषेधः** जिनवाणी (आगम ग्रन्थों) का स्पर्श करना पूर्णतः निषिद्ध है।
4. **मन्दिर प्रवेश निषेध :** जिनमन्दिर के भीतर प्रवेश करना और धर्म -उपकरणों (चँवर, पिच्छी, पूजन पात्र आदि) का स्पर्श करना वर्जित है।

- **दूरवर्ती साधना (भाव-पूजा): आन्तरिक भक्ति का मार्ग**

यदि बाह्य क्रियाओं का निषेध है, तो क्या इस काल में साधना पूर्णतः रुक जाती है ? आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज इसका एक बहुत ही उदार और आध्यात्मिक समाधान प्रस्तुत करते हैं :-

पविसेज्ज जिणगिहं णो, फासेज्ज धम्म-उवयरणादी णो।
मेत्तं सुभावेहि जिण-पूयादि-सुहकज्जं करेज्ज ॥23 ॥
दूरादु जिणदंसणं, वंदणं भत्ति- मुवासणं करेज्ज।
माणत्थंभे सिहरे, विज्जंतणं जिणबिंबाणं ॥24 ॥
अरिहंतं णवदेवं, ण फासेज्ज जवमाल दीवादिं।
गंधुदअ- भरिद- पत्तं, ण जदि को वि देदि तो गहेज्ज ॥25 ॥

भावार्थः- सूतक-पातक के समय जिनमन्दिर में प्रवेश न करे और धर्म -उपकरणों का स्पर्श न करे ; किन्तु केवल अपनी 'शुभ भावनाओं' के माध्यम से ही जिनपूजा आदि शुभ कार्य करे। वह दूर से ही (मन्दिर के बाहर से या मानसिक रूप से) जिनदर्शन, वन्दना, भक्ति और उपासना करे। मानस्तम्भ अथवा मन्दिर के शिखर पर विराजमान जिनबिम्बों की दूर से ही आराधना करे। अरिहंत देव की प्रतिमा, नवदेवता, जापमाला, दीपक तथा गन्धोदक के पात्र का स्पर्श न करे ; हाँ, यदि कोई अन्य व्यक्ति उसे गन्धोदक लाकर देता है, तो वह उसे (मस्तक पर) ग्रहण कर सकता है।

यह नियम स्पष्ट करता है कि जैन दर्शन में क्रियाकाण्ड से अधिक महत्त्व 'भावों' का है। यद्यपि कायिक अशुचिता के कारण बाह्य स्पर्श वर्जित है , किन्तु भाव -पूजा, दूर से दर्शन और मन्त्र -जाप (मानसिक रूप से) निरन्तर जारी रह सकते हैं। यह जीव को अवसाद या प्रमाद से बचाता है।

- **सूतक-पातक की पीढ़ीगत वैज्ञानिक नियमावली**

आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज ने रक्त-सम्बन्धों की निकटता और दूरी के आधार पर सूतक-पातक की समयावधि का एक अत्यंत तार्किक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। पीढ़ी जितनी निकट होगी , अशौच का प्रभाव उतना ही गहरा और लम्बा होगा :-

पीढ़ी	सूतक	पातक	शास्त्रीय प्रमाण
1 से 3 पीढ़ी तक	१० दिन	१२ दिन	गाथा 37
चौथी पीढ़ी	१० दिन	१० दिन	गाथा 38
पाँचवीं पीढ़ी	६ दिन	६ दिन	गाथा 38
छठी पीढ़ी	४ दिन	४ दिन	गाथा 38
सातवीं पीढ़ी	* दिन	* दिन	गाथा 39

आठवीं पीढ़ी	१ दिन	१ दिन	गाथा 39
नवीं पीढ़ी	२ पहर (६ घण्टे)	२ पहर (६ घण्टे)	गाथा 39
दसवीं पीढ़ी	केवल स्नान से शुद्धि	केवल स्नान से शुद्धि	गाथा 39

- **विशिष्ट परिस्थितियाँ और उनके नियम**

- **पुत्री का जन्म या मरण :** यदि अपने घर में पुत्री का जन्म या मरण हो , तो केवल 3 दिन का सूतक/पातक लगता है। विवाह से पूर्व कन्या पिता के कुल के अनुसार अशौच मानती है और विवाह के पश्चात् पति के कुल के अनुसार।
- **घर से बाहर जन्म :** यदि घर के बाहर प्रसूति (बच्चे का जन्म) हो, तो अपने मूल घर में सूतक नहीं लगता, किन्तु ससुराल में १० दिन का सूतक सदा लगता है।
- **विशेष मरण:** यदि परिवार का कोई सदस्य दीक्षित होकर मुनि बन गया हो और उसका मरण हो, या युद्धक्षेत्र में वीरगति प्राप्त हुई हो , या देशान्तर (विदेश) में मरण हुआ हो , अथवा संन्यासमरण (समाधिमरण) हुआ हो, तो केवल १ दिन का पातक माना जाता है।
- **पालतू पशुओं एवं सेवकों का अशौच:** यदि घर के भीतर किसी पालतू पशु (गाय, भैंस आदि) या दासी की प्रसूति या मरण हो , तो केवल १ दिन की अशुद्धि मानी जाती है ; घर के बाहर होने पर कोई अशौच नहीं होता।
- **गर्भपात के नियम:** जितने महीने का गर्भपात होता है, उतने ही दिनों का पातक केवल माता को लगता है। यदि ५ महीने से अधिक का गर्भपात हो , तो माता के साथ -साथ परिवार को भी १ दिन का पातक लगता है।
- **आत्महत्या या भ्रूणहत्या का दण्ड :** यदि परिवार में कोई व्यक्ति आत्महत्या (आत्मघात) कर लेता है या गर्भपात (भ्रूणहत्या) करवाता है , तो परिवार को **६ महीने का दीर्घकालीन पातक** लगता है, क्योंकि यह महापाप की श्रेणी में आता है।
- **साझा व्यवसाय और रसोई:** यदि भाइयों का व्यापार और रसोई (भोजनशाला) एक ही हो, तो अलग-अलग रहने पर भी उन्हें मूल परिवार के समान ही पूर्ण सूतक-पातक लगता है।

❖ **सूतक-पातक के अपवाद: कौन हैं अशौच से सर्वथा मुक्त?**

जैन आचार -मीमांसा के अनुसार , सूतक-पातक के नियम केवल सामान्य गृहस्थों पर लागू होते हैं। समाज के शीर्ष नेतृत्व और साधना के उच्च शिखर पर आरूढ़ महापुरुषों को इन बाधाओं से मुक्त रखा गया है, ताकि सामाजिक, प्रशासनिक और धार्मिक व्यवस्थाएँ सुचारू रूप से चलती रहें :-

1. **देव और नारकी:** देवगति के जीव और नारकी जीव सूतक -पातक के दोष से सर्वथा मुक्त होते हैं।

2. **भोगभूमिज मनुष्यः** कल्पवृक्षों के सहारे जीवन यापन करने वाले भोगभूमि के मनुष्य भी इस दोष से रहित होते हैं।
3. **शलाका पुरुष एवं शासक** : तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, महामण्डलीक, अर्धमण्डलीक, मण्डलीक राजा, कामदेव, बलदेव, कुलकर और राजा आदि प्रशासनिक एवं सार्वभौमिक महापुरुष इस अशौच दोष से मुक्त होते हैं।
4. **दीक्षित साधक (श्रमण संघ):** दीक्षित मुनिराज (श्रमण), आर्यिका माताजी, एलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, वर्णी, और व्रतपूर्वक घर का त्याग करने वाले ब्रह्मचारी — जिन्होंने संकल्पपूर्वक दीक्षा धारण की है, उन्हें कभी भी सूतक या पातक नहीं लगता। मुनिराज का शरीर परम पावन और संयम का उपकरण होने के कारण अशौच की सीमाओं से परे है।

❖ नैतिक एवं सामाजिक शुचिता के कठोर मापदण्ड

ग्रन्थकार ने सूतक-पातक के शारीरिक अशौच के साथ-साथ नैतिक अशौच पर भी बहुत कड़ा प्रहार किया है।

- **व्यभिचार का शाश्वत सूतक**

वहिचारिणी-इत्थीण, वा परित्थीगामीण पुरिसाणं।
सया सूयगं होज्ज, ण सुद्धा पूयादाणेहिं वि॥५४॥

भावार्थः- व्यभिचारिणी स्त्रियों और परस्त्रीगामी पुरुषों को 'सदा ही सूतक' (निरन्तर अपवित्रता) रहता है। वे पूजा, दान या किसी भी धार्मिक अनुष्ठान से कभी भी शुद्ध नहीं हो सकते।

यह गाथा जैन दर्शन की नैतिक दृढ़ता को दर्शाती है। जन्म-मरण का सूतक तो १०-१२ दिनों में समाप्त हो जाता है, परन्तु जो व्यक्ति चरित्रहीन है, जो व्यभिचार में लिप्त है, उसका अशौच शाश्वत है। जब तक वह इस पाप का पूर्ण त्याग कर प्रायश्चित नहीं करता, तब तक वह आध्यात्मिक रूप से पतित और अशुद्ध ही रहता है।

- **पशुओं के दुग्ध-पान सम्बन्धी वैज्ञानिक नियम**

पशुओं के प्रसव के पश्चात् उनके दूध की शुद्धि के विषय में भी विशिष्ट समय-सीमा निर्धारित की गई है:

- **प्रसूता गाय का दूधः** १५ दिन तक अभक्ष्य (अपेय) है।
- **प्रसूता भैंस का दूधः** १० दिन तक अभक्ष्य है।

- **प्रसूता बकरी का दूधः** ८ दिन तक अभक्ष्य है।

यह नियम पशु और उसके नवजात बच्चे के स्वास्थ्य (खीस का अधिकार बच्चे को मिलना) तथा मानव स्वास्थ्य दोनों की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक है।

❖ शास्त्रीय मर्यादाओं के उल्लंघन का दार्शनिक परिणाम

आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज सचेत करते हैं कि अशौच की अवस्था में हठपूर्वक या लोभवश की गई बाह्य क्रियाएँ पुण्य के स्थान पर घोर पाप का कारण बनती हैं :-

सूयगं पादगं जो, णैव मण्णेइ मिच्छादिट्ठी सो।
जिणवयण-लंहणादो, अभव्वो दीहसंसारी वा ॥५७॥
कुणइ धम्मकज्जं जदि, पुण्णलोहेण वा कसाएण।
तो दुग्गइ- पत्तो बहु- दुहभोत्ता महापाविट्ठो ॥५८॥

भावार्थः- जो मनुष्य सूतक और पातक के नियमों को नहीं मानता, वह निश्चय ही 'मिथ्यादृष्टि' (श्रद्धानहीन) है। जिनवचनों का उल्लंघन करने के कारण वह या तो अभव्य है या दीर्घ संसारी (संसार में लम्बे समय तक भटकने वाला) है। यदि कोई व्यक्ति पुण्य के लोभ से या कषाय के वशीभूत होकर इस अशौच अवस्था में हठपूर्वक धर्मकार्य (पूजन-अभिषेक आदि) करता है, तो वह तीव्र पाप का बन्ध करके दुर्गति (नरक-तिर्यञ्च आदि) को प्राप्त होता है और महान दुःखों को भोगता हुआ महापापी कहलाता है।

अशौच काल में शरीर में अनेक सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होती है और मन की स्थिति भी विचलित रहती है। ऐसे समय में मन्दिर जाकर पूजा करने से या मुनिराजों को आहार देने से 'वैयावृत्य' के स्थान पर 'अन्तराय' और 'असंयम' की स्थिति बनती है। अतः नियमों का पालन करना आज्ञा - सम्यक्त्व का अंग है।

❖ ग्रन्थ की भाषिक, साहित्यिक एवं ऐतिहासिक संपदा

- **भाषा और शैली**

यह ग्रन्थ **जैन शौरसेनी प्राकृत** भाषा में निबद्ध है। इसकी शैली सूत्रात्मक, वर्णनात्मक और उपदेशात्मक है। ग्रन्थ में प्रयुक्त छंद मुख्यतः **गाथा (आर्या)** है, जो प्राकृत साहित्य का प्राण माना जाता है। ग्रन्थकार की अभिव्यक्ति इतनी प्रांजल है कि जटिल नियमों को भी गेय और कण्ठस्थ करने योग्य बना दिया गया है।

- **पारिभाषिक शब्दावली तालिका**

ग्रन्थ में जैन आचार -मीमांसा से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है:-

प्राकृत रूप	**संस्कृत समतुल्य**	**हिन्दी अर्थ एवं व्याख्या**
सूयगो / सूदगो	सूतकम्	जन्मजन्य कौटुम्बिक अशौच या शारीरिक अपवित्रता।
पादगो	पातकम्	मरणजन्य अशौच, जिसमें विशिष्ट दिनों की शुद्धि अनिवार्य है।
सायारो	सागारः	गृहस्थ श्रावक, जो घर (आगार) सहित व्रतों का पालन करता है।
रयणत्तयं	रत्नत्रयम्	सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकता।
सव्वगतं	सर्वगतम्	व्यापकता (ज्ञान की अपेक्षा से लोकालोकव्यापी होना)।
सअप्पसोहण	स्व-आत्मशोधन	अपनी आत्मा को कर्म मल से मुक्त करने की साधना।
अभव्वो	अभव्यः	वह जीव जो कभी भी मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता नहीं रखता।

- **ग्रन्थ का ऐतिहासिक पुष्पिका विवरण**

ग्रन्थ की समाप्ति पर आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज ने इसके रचना -काल, स्थान और गुरु-परम्परा का अत्यन्त गौरवशाली विवरण प्रस्तुत किया है:-

परमप्पा- परमेट्ठी- वद- चेण- वीरद्धम्मे पुण्णो।
मइ सूरिवसुणंदिणा, कंपिल- तिथखेत्ते हिदाए॥६४॥

भावार्थः- परमात्मा (२), परमेष्ठी (५), व्रत (५) और चेतना (२) अर्थात् इस प्रकार **वीर निर्वाण संवत् २५५२** में, मेरे (आचार्य वसुनन्दि मुनि) द्वारा **कंपिल (कंपिलजी) तीर्थक्षेत्र** पर लोक-कल्याण की भावना से यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया।

यह गाथा ग्रन्थ के काल -निर्धारण का अचूक प्रमाण है। वीर निर्वाण संवत् २५५२ (जो कि ईसवी सन् के अनुसार समकालीन कालखण्ड को दर्शाता है) में इस ग्रन्थ की रचना कम्पिल जी तीर्थक्षेत्र (उत्तर प्रदेश) पर की गई। साथ ही, गाथा 63 में आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज ने अपनी गुरु-परम्परा के महान संतों को नमन किया है, जिसमें **चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज, आचार्य श्री पायसागर जी, आचार्य श्री जयकीर्ति जी, आचार्य श्री देशभूषण जी**, और अपने

प्रत्यक्ष दीक्षा-गुरु **श्वेतपिच्छाचार्य राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज** के चरणों में नतमस्तक होकर इस ग्रन्थ की शास्त्रीय प्रामाणिकता को सुदृढ़ किया है।

❖ **निष्कर्ष**

आचार्यश्री वसुनन्दिजी मुनिराज विरचित **'सूतग-पादग-णिण्णय-विही'** केवल शारीरिक शुचिता का नियम -संग्रह नहीं है , बल्कि यह बाह्य शुद्धि के माध्यम से आन्तरिक विशुद्धि (भाव-शुद्धि) प्राप्त करने का एक उत्कृष्ट मार्गदर्शक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ स्पष्ट करता है कि जैन आचारशास्त्र में वैज्ञानिकता, व्यावहारिकता और आध्यात्मिकता का कितना अद्भुत समन्वय है। पीढ़ीगत अशौच की वैज्ञानिक समयावधि, विशिष्ट शारीरिक अवस्थाओं (गर्भावस्था, प्रसूति) में स्वास्थ्य रक्षा के नियम , और नैतिक चारित्रिक शुद्धता (व्यभिचार-निषेध) को सर्वोपरि स्थान देकर आचार्य ने इस लघु -ग्रन्थ को श्रावक जीवन का एक व्यावहारिक संविधान बना दिया है। यह ग्रन्थ प्राकृत साहित्य , जैन समाजशास्त्र और नैतिक दर्शन की अनमोल धरोहर है।